

महर्षि दयानन्द और मूर्तिपूजा

लेखिका

डा० भारती जाधव

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान

इलाहाबाद

महर्षि दयानन्द निर्वाण शती निबन्धमाला—अष्टम पुष्प

सम्पादक

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

प्रकाशक

डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान

विज्ञानपरिषद् भवन

महर्षि दयानन्द मार्ग

इलाहाबाद - २११००२

प्रथम संस्करण

१९८३ ई०

मूल्य : दो रुपया

मुद्रक

सरयू प्रसाद पाण्डेय

नागरी प्रेस

अलोपीबाग, इलाहाबाद

thearyasamaj.org

द्वे वचसी

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान प्रयाग की परम विदुषी सदस्याओं और लेखिकाओं ने मेरे आग्रह पर महर्षि निर्वाणशती १९८३ ई० के अवसर पर अत्यन्त महत्वपूर्ण निबन्ध लिखने का अनुग्रह किया है।

इस निबन्धमाला का यह अष्टम पुष्प है और इसकी विदुषी लेखिका डा० भारती जाधव, एम० एस-सी०, पी० एच० डी० राजर्षि शाहू महाविद्यालय, लातूर, मराठवाडा के वनस्पति विभाग की प्राध्यापिका हैं। डा० भारती को प्रारम्भ से ही आर्य साहित्य में रुचि रही, और वे अपने अवकाश का पर्याप्त समय समाज सेवा के निमित्त देती हैं। कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्तियों के बीच में वे कई वर्षों से सेवा और सुधार का काम कर रही हैं।

मूर्तिपूजा हमारे देश का एक अतिव्याप्त अभिशाप है। महर्षि दयानन्द को अपने वाल्यकाल से ही मूर्तिपूजा से विरक्ति हो गयी थी। इस सम्बन्ध में ऋषि का क्या दृष्टिकोण था, डा० भारती जी के निबन्ध से आपको भलीभांति परिचय हो जायगा। महाभारत से पूर्व के आर्षकाल में हमारे देश में मूर्तिपूजा और अवतारवाद का प्रचलन न था। वैष्णव सम्प्रदाय ने मूर्तिपूजा का विशेष प्रचार किया। इसका मूल प्रचलन बौद्ध और शैव धर्मों से हुआ जो नास्तिक थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने दीपावली १८८३ ई० (१६४० वि०) के दिवस अजमेर नगरी में अपना शरीर त्यागा १९८३ ई० इस दृष्टि से महर्षि दयानन्द निर्वाणशती का वर्ष है। महर्षि दयानन्द ने मानव जाति को कर्तव्याकर्तव्य और धार्मिक चेतनाओं के सम्बन्ध में नई चेतनाएँ दीं। इस शताब्दी के अवसर पर हमने संस्थान की विदुषी सदस्याओं और सहयोगियों से ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में कुछ निबन्ध लिखने की प्रार्थना की और इन निबन्धों के सम्पादन का भार स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती को सौंपा। डा० भारती जाधव का यह निबन्ध भी उसी निबन्धमाला का एक पुष्प है।

आशा है कि ये निबन्ध जनता में समादृत होंगे।

एस० रंगनायकी

एम० एस-सी०, डी० फिल०, डी० एस

सी०

निदेशिका

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान

इलाहाबाद

५सितम्बर१

महर्षि दयानन्द और मूर्तिपूजा

बालक दयानन्द और शिवरात्रि

सौराष्ट्र प्रदेश में टंकारा नामक एक छोटी सी नगरी है। सन् १८२४ ई० में इस नगरी में एक बालक का जन्म हुआ, जो आज महर्षि दयानन्द के नाम से जगत् विख्यात है। उनके बचपन के नाम मूलशंकर और दयाल जी बताये जाते हैं। दयानन्द ने पूना प्रवचन (सं० १५) में अपना वृत्त बताते हुए लिखा है (४ अगस्त १८७५ ई०)—“धॉंगध्रा नामका एक संस्थान (राज्य) गुजरात देश में है। उसकी सीमा पर मौरवी शहर है। उसमें मेरा जन्म हुआ है। मैं औदीच्य ब्राह्मण हूँ। औदीच्य ब्राह्मण सामवेदी हैं, परन्तु मैंने शुक्ल यजुर्वेद पढ़ा। मेरे घर में अच्छी जमींदारी है। इस समय मेरा वय ४६-५० होगा (१८७५ ई० में)। आठवें वर्ष मेरी पीठ की (पीछे की) एक बहिन उत्पन्न हुई थी। मेरा एक चाचा था। वह मुझसे बहुत प्रीति करता था मेरे घराने में अब पन्द्रह घर हो गए होंगे।

मुझको बचपन में रुद्र (रुद्राध्याय) आदि सिखाकर (कण्ठस्थ कराके) शुक्ल यजुर्वेद पढ़ाना आरम्भ किया। मेरे पिता ने शिवार्चन करने में लगा दिया। दस वर्ष (की आयु) से मैं पार्थिव पूजन करने लगा। मेरे पिता ने शिवरात्रि (का व्रत) करने को कहा, परन्तु मैंने शिवरात्रि (का व्रत) नहीं किया। तब शिवरात्रि की कथा मुझे सुनाई। तब वह कथा मेरे को बहुत सुन्दर लगी और मैंने उपवास करने का निश्चय कर लिया। माता "उपवास मत करो", ऐसा कहती थीं परन्तु उसे न मानकर मैंने उपवास किया। परन्तु उपवास किया नहीं गया।

मेरे गाँव में गाँव से बाहर एक बड़ा देवालय है। उसमें शिवरात्रि के दिन रात में बहुत लोग जाते थे और पूजा-अर्चा करते थे। मेरे पिता, मैं, और भी बहुत से लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे। पहले प्रहर की पूजा कर ली। दूसरे प्रहर की भी पूजा हो गयी। अनन्तर बारह बजने पर धीरे-धीरे लोग जहाँ के तहाँ ही झपकी लेने लगे। मेरे पिता को भी झपकी आ गयी। इतने में पुजारी बाहर गया। उपवास निष्फल होने के भय से मैं सोया नहीं। इतने में ऐसा चमत्कार हुआ कि मन्दिर में बिल से चुहे बाहर निकले और [महादेव की] पिण्डी के आसपास फिरने लगे। पिण्डी के चावलों को ही खाने लगे। मैं जगा हुआ ही था। इसलिए यह चमत्कार देख रहा था। [इससे] पूर्व दिन शिवरात्रि की कथा सुनी थी। उसमें शिव के अकराल-विकराल (=भयंकर) गण, उसके पाशुपतास्त्र,

उसके वाहन वृषभ और उसके अद्भुत वीर्यादि विषय में बहुत सुन चुका था। इसलिए अब चुहों की यह लीला देखी तब मेरी बाल-बुद्धि में ऐसा लगा कि जोशिव अपने पाशुपतास्त्र से बड़े से बड़े प्रचण्ड देत्यों को मारता है, वह ऐसे चुहों को देखकर [अपने ऊपर से] क्यों नहीं हटाता? पिता ने कहा कि तेरी बुद्धि अत्यन्त भ्रष्ट है। यह केवल देवता की मूर्ति है, तब मैंने संकल्प किया कि जब उस त्रिशुलधारी (शिव) को मैं प्रत्यक्ष देखूँगा, तभी पूजा करूँगा, अन्यथा (पूजा) नहीं करूँगा। ऐसा कर मैंघर चला गया और भूख लगी हुयी थी। इसलिए माता को खाने को माँगा। माता ने कहा—“मैंने तुझसे पहले ही कहा था कि उपवास तुझसे नहीं होगा। तूने ही हठ किया।” (मता ने फिर मुझे खाने को दिया) और दो दिन तू उनके (पिता के) पास मत जाना और उनसे मत बोलना, नहीं तो मार खाएगा।” ऐसा कहा। खाकर मैं जाकर सो गया तो दूसरे दिन आठ बजे उठा। मैंने सारी कथा चाचा से कही। ‘अध्ययन के कारण मुझसे उपवास आदि नहीं होते, ऐसा चाचा ने पिता को कहकर समझा दिया। उस समय मैं यजुर्वेद पढ़ रहा था और कोई एक पण्डित मुझको व्याकरण पढ़ाता था। सोलहवें या सत्रहवें वर्ष में यजुर्वेद समाप्त हुआ।’

"थियोसोफिस्ट" में छपा विवरण

दश वर्ष की आयु से अर्थात् शिवरात्रि के इस व्रत के अनन्तर ही दयानन्द को मूर्तिपूजा से विरक्ति हो गयी। सर सैयद अहमद के शब्दों में (१८८० ई०)—“यह इलहाम नहीं था, तो क्या था जिसने स्वामी दयानन्द सरस्वती के दिल को मूर्ति-पूजन से फेरा। वेदों के उन मुकामात को देखो, जहाँ ज्योतिस्वरूप निराकार की वहदानियत और उसकी शिफ्रात का वयान किया है।”

स्वामी जी ने थियोफिस्ट पत्रिका में कर्नल ऑलकट के कहने पर जो आत्मचरित छपाया, उसमें शिवरात्रि की घटना के सम्बन्ध में निम्न शब्द थे—

“Whatever the Siva Purana was to be read and explained, There my father was sure to take me along with him. Finally unmindfull of my mother's remonstrances, he imperatively demanded that I should begin practising Parthiva Puja. When the great day of gloom and fasting-called Sivaratri-arrived, this day falling on the 13th of Vadya of Magh, my father regard

less of the protest of my mother that my strength might fail, commanded me to keep a fast adding that I had to be initiated on that night into the sacred legend and participate in that night's long vigil in the temple of Siva. Accordingly, I followed him along with other young men, who accompanied their parents. This vigil is divided into four parts, called paharas (or prabaras) consisting of three hours each. Having completed my task, namely, having sat up for the first two paharas till this hour of midnight, I marked that the pujaaris, or temple servants and some of the lay devotees after having left the inner temple, had fallen asleep outside. Having been taught for years that by sleeping on that particular night, the worshipper loses all the good effect of his devotion, I tried to refrain from drowsiness by bathing my eyes now and then with cold water. But my father was less fortunate. Unable to resist fatigue, he was the first to fall asleep, leaving me to watch alone.

"Thoughts upon thoughts crowded upon me, and one question arose after another in my disturbed mind. Is it possible, I asked myself, that this semblance (लिंग) of man, the idol of a Personal God that I see bestriding his bull before me, and who, according to all religious accounts, walks about, eats, sleeps, and drinks who can hold a trident in his dumroo (drum) and pronounce curses upon men, is it possible that he can be the Mahadeva, the great Deity, the same that is invoked as the Lord of Kailash, the supreme being and the divine hero of all the stories we read of in the Puranas.

Unable to resist such thoughts any longer, I awoke my father abruptly asking him to enlighten me and tell me whether this hideous emblem of Siva in the temple was identical with the Mahadeva (Great God) of the scriptures, or something else. "Why do you ask it?" said my father. Because, I answered, I feel it impossible to reconcile the idea of an omnipotent, living God, with this idol, which allow the mice to run upon its body, and thus suffers its image to be polluted without the slightest protest. Then my father tried to explain to me that this stone representation of the Mahadeva of Kailash, having been consecrated with the Veda mantras in the most solemn way by the holy Brahmins, became in consequence the God himself, and is worshipped as such, adding that as Siva cannot be perceived personally in this KaliYuga the age of metal darkness,—we have the idol in which the Mahideva of Kailash is worshipped by his votaries, this kind of worship is pleasing to the great deity, as much as if, instead of the emblem, he were there himself. But the explanation fell short of satisfying me. I could not, young as I was, help suspecting misinterpretation and sophistry in all this. Feeling faint with hunger and fatigue, I begged to be allowed to go home. My father consented to it, and sent me away with a sepoy, only reiterating once more his command that I should not eat. But when once home, I told my mother of my hunger, and she fed me with sweetmeats, and I fell into profound sleep."

परमात्मा निराकार है

वेद में ईश्वर के स्वरूप को व्यक्त करने वाले अनेक मंत्र हैं, इस सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने एक मंत्र यजुर्वेद (४०।८) की निम्न व्याख्या के साथ सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में उद्धृत किया।

पर्यगाच्छुक्रमकामंत्रणमस्त्राविर शुद्धमापविद्धम् ।

कविमैनीषी परिभूः स्वयम्भूर्पाथातव्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्य ॥

यजुः अ० ४०। मं ८ ॥

ईश्वर की स्तुति—वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सब का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूपी सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है यह सगुण स्तुति अर्थात् जिस-जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुण, (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश दुःख अज्ञान कभी नहीं होता, इत्यादि जिस-जिस राग द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है।

संसार में जितने भी आस्तिक व्यक्ति हैं, कोई को ईश्वर जो साकार नहीं मानते हैं, और न यह मानते हैं कि अन्यजीवधारियों की तरह ईश्वर जन्मता या मरता है। भारतवासी भी महाभारत से पूर्व तक मूर्ति पूजा नहीं करते थे मूर्तिपूजा का उल्लेख किसी आर्य ग्रन्थ (दर्शनशास्त्र एवं उपनिषद्) में नहीं है, वेद की तो बात ही अलग है। जो निराकार हैं, उसकी प्रतिमा नहीं होती वह पाँचों इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता है, अर्थात् वह इन्द्रियों की पहुँच के बाहर है। महर्षि दयानन्द इस सम्बन्ध में सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में निम्न शब्द लिखते हैं—परमेश्वर के स्थान में किसी अन्य पदार्थ की पूजा करना वेद विरुद्ध है वेद और उपनिषद् के निम्न वाक्य स्वामी जी ने उद्धृत किये हैं—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते

ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याः रताः ॥

अजु० अ० ४०। मं० ९ ॥

न तस्य प्रतिमा अस्ति । [२] यजुः० अ० ३२। मं० ३ ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ १ ॥

यन्मनसा न मनुते येनाहर्मनो मतम् ।

तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ २ ॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूषि पश्यन्ति ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ३ ॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४ ॥

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५ ॥

[केनोपनि० खं० १। मं० ४-८] ॥

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं। और जो संभूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं, वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखस्वरूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते हैं ॥१ ॥ जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है ॥२ ॥ जो वाणी का 'इदंता' अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसा विषय नहीं और जिसके धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है उसी को ब्रह्म जान और उपासना कर और जो उससे भिन्न है वह उपासनीय नहीं ॥ १ ॥ जो मन से 'इयत्ता करके मनन में नहीं आता, जो मन को जानता है, उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो उससे भिन्न जीव और अन्तःकरण उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर ॥ २ ॥ जो आँख से नहीं दीख पड़ता और जिससे सब आंखें देखती हैं उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर और जो उससे भिन्न सूर्य, विद्युत और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी उपासना मत कर ॥ ३ ॥ जो श्रोत से नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत सुनता है, उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और उससे भिन्न शब्दादि की उपासना उसके स्थान में मत कर ॥४ ॥ जो प्राणों से चलायमान नहीं होता, जिससे प्राण गमन को प्राप्त होता है, उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो यह उससे भिन्न वायु है उसकी उपासना मत कर ॥ ५ ॥

विहित और निषिद्धकर्म

कर्म दो ही प्रकार के होते हैं—एक विहित—जो कर्तव्यता से वेद में सत्यभाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध—जो अकर्तव्यता से मिथ्याभाषणादि वेद में निषिद्ध हैं। जैसे विहित का अनुष्ठान करना वह धर्म, उसका न करना अधर्म है, वैसे ही निषिद्ध कर्म का करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेदों से निषिद्ध मूर्तिपूजादि कर्मों को तुम करते हो तो पापी क्यों नहीं?

एक विचित्र तर्क—मूर्तिपूजा-उपासना की प्रारम्भिक कड़ी

कुतर्क—देखो ! वेद अनादि है। उस समय मूर्ति का क्या काम था ? क्योंकि पहले तो देवता प्रत्यक्ष थे। यह रीति तो पीछे से तन्न और पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया तो परमेश्वर को ध्यान में नहीं ला सके, और मूर्ति का ध्यान तो कर सकते हैं, इस कारण अज्ञानियों के लिए मूर्तिपूजा है। क्योंकि सीढ़ी-सीढ़ी से चढ़े तो भवन पर पहुँच जाय। पहिली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहें तो नहीं जा सकता, इसलिए मूर्ति प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजते पूजते जब ज्ञान होगा और अन्तःकरण पवित्र होगा तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा। जैसे लक्ष्य के मारने वाला प्रथम स्थल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला आदि मारता मारता पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना मार सकता है वैसे स्थूल मूर्ति की पूजा करता-करता पुनः सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है जैसे लड़कियाँ गुड़ियों का खेल तब तक करती हैं कि जब तक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं, इत्यादि प्रकार से मूर्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं।

उत्तर—जब वेदविहित धर्म और वेदविरुद्धाचरण में अधर्म है तो पुनः तुम्हारे कहने से भी मूर्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो-जो ग्रन्थ वेद से विरुद्ध हैं उन उनका प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो:—

नास्तिको वेदनिन्दकः ॥१॥ [मनु० २ ११] ॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥ २ ॥

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ।

तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ ३ ॥

मनु० अ० १२ [श्लो० ६५, ६६] ॥

मनुजी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है ॥ १ ॥ जो ग्रन्थ वेदबाह्य कुत्सित पुरुषों के बनाये संसार को दुःखसागर में डुबाने वाले हैं वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप, इस लोक और परलोक में दुःखदायक हैं ॥२ ॥ जो इन वेदों विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उनका मानना निष्फल और छूटा है ॥३ ॥ इसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर जैमिनी महर्षिपर्यन्त का मत है कि वेदविरुद्ध कोन मानना किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्यों ? वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है, इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं वेदविरुद्ध होने से झूठे हैं कि जो वेद से विरुद्ध चलते हैं, उनमें कही हुई मूर्तिपूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट हो जाता है। इसलिए ज्ञानियों का सेवा संग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है ? नहीं-नहीं, मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है। पुनः उस खाई से नकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है। हाँ, छोटे विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं, जैसी ऊपर घर में जाने की निःश्रेणी होती है। किन्तु मूर्तिपूजा करते-करते ज्ञानी तो कोई न हुआ प्रत्युत सब मूर्तिपूजा अज्ञानी रह कर मनुष्यजन्म व्यर्थ खोके बहुत से मर गये और जो अब हैंवा होंगे वे भी मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थ नष्ट हो जाएंगे। मूर्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्षवत् नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टिविद्या है। इसको बढ़ाता-बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है। और मूर्ति गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिए ! जब अच्छी विद् और शिक्षा को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जाएगा।

साकार के माध्यम से मन की स्थिरता

प्रश्न—साकार में मन स्थिर होता और निराकार में स्थिर होना कठिन है, इसलिए मूर्तिपूजा रहनी चाहिये।

उत्तर—साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार अनन्त परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता।

निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण कर्म स्वभाव का विचार करता-करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फँसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावे, क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है।

मूर्तिपूजा के विविध दोष

- (१) उसमें करोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रसाद होता है
- (२) स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई, बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।
- (३) उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मानके पुरुषार्थरहित होकर मनुष्यजन्म व्यर्थ गंवाता है।
- (४) नाना प्रकार की विरुद्धस्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमत में चल कर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं।
- (५) उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गधे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विधि दुःख पाते हैं।
- (६) जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान [कर] देता है वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्तियाँ धरते हैं उन दुष्टबुद्धिवालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे ?
- (७) भ्रान्त होकर मन्दिर-मन्दिर देशदेशान्तर में घूमते-घूमते दुःख पाते, धर्म संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं ?
- (८) दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं वे उस धन को वेश्या, परस्त्रीगमन, मद्य, मांसाहार, और लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है।

(६) माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।

(१०) उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब हा-हा करके रोते रहते हैं।

(११) पुजारी परस्त्रियों के संग और पुजारिन परपुरुषों के संग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ खो बैठते हैं।

(१२) स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

(१३) जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़ बुद्धि हो जाता है क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।

(१४) परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिए बनाये हैं, उनको पुजारी जी तोड़ताड़ कर न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़ कर वायु जल की शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्य ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल सड़ कर उलटा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्धियुक्त पदार्थ रचे हैं ?

(१५) पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प चन्दन और अक्षत आदि सब का जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़ के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का। और सहस्रों जीव उसमें पड़ते उसी में मरते और सड़ते हैं।

ऐसे-ऐसे अनेक मूर्तिपूजा के करने में दोष आते हैं। इसलिए सर्वथा पाषाणादि मूर्तिपूजा सज्जन लोगों को व्यक्तव्य है। और जिन्होंने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं, और न बचेंगे।

पंचायतन पूजा

प्रश्न—किसी प्रकार की मूर्तिपूजा करनी करानी नहीं और जो अपने आर्यावर्त में पंचदेवपूजा शब्द प्राचीन परम्परा से चला आता है उसका यही पंचायतन पूजा जो कि शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य की मूर्ति बना कर पूजते हैं यह पंचायतनपूजा है वा नहीं ?

उत्तर—किसी प्रकार की मूर्तिपूजा न करना, किन्तु 'मूर्तिमान्' जो नीचे कहेंगे उनकी पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिये। वह पंचदेवपूजा, पञ्चायतनपूजा शब्द बहुत अच्छा अर्थ वाला है परन्तु विद्याहीन मूर्तियों ने उसके उत्तम अर्थ को छोड़ कर निकृष्ट अर्थ पकड़ लिया। जो आजकल शिवादि पाँचों की मूर्तियाँ बनाकर पूजते हैं उनका खण्डन तो अभी कर चुके हैं। पर जो सच्ची पञ्चायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्तिपूजा [वह] सुनो:—

मा ना बधीः पितरं मोत मातरम् ॥१॥

यजु० [अ० १६। मं० १५] ॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारणमिच्छते ॥२॥

[तुलना०—अथर्व० ११।५।१७] ॥

अतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥३॥ अथर्व० [कां० १५। व० १६। मं० ६] ॥

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ॥४॥

ऋग्वेदे [मं० ८। सू० ६९। मं० ८] ॥

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥५॥

तैत्तिरीयोपनि० [बल्ली० १। अनु० १] ॥

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥ ६ ॥

शतपथ० [कां०] [१४] प्रपाठ० ५। ब्राह्म० ७। कडिको १० ॥

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ॥७॥

तैत्तिरीयोप० [शिक्षावल्ली। अनु० ११] ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।

पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥८॥ मनु० [३। ५५] ॥

पूज्य देववत्पतिः ॥९॥ मनुस्मृतौ [५। १५४] ॥

(१) माता मूर्तिमती पूजनीय देवता, अर्थात् सन्तानों को तन मन धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना ॥१॥

(२) पिता, सत्कर्तव्य देव। उसकी भी माता के समान सेवा करनी ॥२॥

(३) आचार्य जो विद्या का देने वाला है उसकी तन मन धन से सेवा करनी ॥३॥

(४) अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपट, सबकी उन्नति चाहने वाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सब को सुखी करता है उसकी सेवा करें ॥ ४ ॥

(५) स्त्री के लिये [स्व] पति और पुरुष के लिये स्व पत्नी पूजनीय है ॥८॥ ये पाँच मूर्तिमान देव जिनके संग से मनुष्यदेह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये हो परमेश्वर को प्राप्ति होने की सीढ़ियाँ हैं। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं वे अतीव वेदविरोधी हैं।

प्रश्न—माता पिता आदि की सेवा करें और मूर्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं ?

उत्तर—पाषाणादि मूर्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानों की सेवा करने ही में कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मानना स्वीकार किया। इसको लोगों ने इसलिए स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने नैवेद्य वा भेंट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेंट पूजा ले लेंगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा। इससे पाषाणादि की मूर्ति बना, अंगूठा दिखला अर्थात् 'त्वमङ्गुष्ठं गृहाण भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहिष्यामि' जैसे कोई किसी को छ वा चिड़ावे कि तू घण्टा ले और अंगूठा दिखलावे उसके आगे से सब पदार्थ से आप भोगे, वैसा ही लीला इन पूजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है। ये लोग चटक मटक चलक झलक मूर्तियों को बना ना आप ठगों के तुल्य बन ठन के बिचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मारके मौज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाण प्रियों को पत्थर तोड़ने बनाने और घर रचने आदि कामों में लगा के खाने पीने को देता, निर्वाह कराता।

वीतराग मूर्तियों से वैराग्य की भावना

प्रश्न—जैसे स्त्री आदि की पाषाणादि मूर्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है वैसे वीतराग शान्त की मूर्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति क्यों न होगी ?

उत्तर—नहीं हो सकती, क्योंकि वह मूर्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचारशक्ति घट जाती है। विवेक के बिना न वैराग्य और वैराग्य के बिना विज्ञान, विज्ञान के बिना शान्ति नहीं होती। और जो कुछ होता है सो उनके संग, उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है, क्योंकि जिसका गुण वा दोष न जानके उसकी मूर्तिमान देखने से प्रीति नहीं होती। प्रीति होने का कारण गुणज्ञान है ऐसे मूर्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्यावर्त में निकम्मे पुजारी भिक्षुक आलसी पुरुषार्थ रहित करोड़ों मनुष्य हुए हैं। सब

संसार में मूढ़ता उन्होंने फैलाई है। झूठ छल भी बहुत सा फैला है। **मूर्तियाँ और चमत्कार**

प्रश्न—(१) देखो काशी में 'औरंगजेब' बादशाह को 'लाटभैरव' आदि ने बड़े-बड़े चमत्कार दिखलाये थे। जब मुसलमान उनको तोड़ने गये और उन्होंने जब उन पर तोप गोला आदि मारे, तब बड़े-बड़े भ्रमरे निकल कर सब फौज को व्याकुल कर भगा दिया ?

उत्तर—यह पाषाण का चमत्कार नहीं। किन्तु वहाँ भ्रमरे के छत्ते लग रहे होंगे। उनका स्वभाव ही क्रूर है, जब कोई उनको छेड़े तो वे काटने को दौड़ते हैं। और जो दूध की दारा का चमत्कार होता था वह पुजारी जी की लीला थी।

प्रश्न—(२) देखो ! महादेव म्लेच्छ को दर्शन न देने के लिए में और वेणीमाधव एक ब्रह्मण के घर में जा छिपे। क्या यह भी चमत्कार नहीं है ?

उत्तर—भला जिसके कोटपाल कालभैरव आदि भूत प्रेत और गरुड़ आदि गणों ने मुसलमानों को लड़के क्यों न हटाये ? जब महादेव और विष्णु की पुराणों में कथा है कि अनेक त्रिपुरासुर आदि बड़े भयंकर दुष्टों को भस्म कर दिया तो मुसलमानों को भस्म क्यों न किया ? इससे यह सिद्ध होता है कि वे बिचारे पाषाण क्या लड़ते लड़ाते ? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्तियों को तोड़ते फोड़ते हुए काशी के पास आए तब पुजारियों ने उस पाषाण के लिंग को कूप में डाल और वेणीमाधव को ब्राह्मण के घर में छिपा दिया। जब काशी में कालभैरव के डर के मारे यमदूत नहीं जाते और प्रलय समय में भी काशी का नाश होने नहीं देते, तो म्लेच्छों के दूत क्यों न डराये ? और अपने राज के मन्दिर का क्यों नाश होने दिया ? यह सब पोपमाया है।

प्रश्न—(३) गया में श्राद्ध करने से पितरों का पाप छूट कर वहाँ के श्राद्ध के पुण्यप्रभाव से पितर स्वर्ग में जाते और पितर अपना हाथ निकाल कर पिण्ड लेते हैं, क्या यह भी बात झूठी है ?

उत्तर—सर्वथा झूठ, जो वहाँ पिण्ड देने का वही प्रभाव है तो जिन पण्डों को पितरों के सुख के लिये लाखों रुपये देते हैं उनका व्यय गयावाल वेश्यागमनादि पाप में करते हैं वह पाप क्यों नहीं छूटता ? और हाथ निकलता आज कल कहीं नहीं दीखता, बिना पण्डों के हाथों के। यह कभी किसी धूर्त ने पृथ्वी में गुफा खोद उसमें एक मनुष्य बैठा दिया होगा। पश्चात् उसके मुख पर कुश बिछा पिण्ड दिया होगा। और उस कपटी

ने उठा लिया होगा। किसी आँख के अन्धे गाँठ के पूरे को इस प्रकार ठगा हो तो आश्चर्य नहीं वैसे ही बैजनाथ को रावण लाया था, यह भी मिथ्या बात है।

प्रश्न—(४) देखो ! कलकत्ते की काली और कामाक्ष आदि देवी को लाखों मनुष्य मानते हैं, क्या यह चमत्कार नहीं है ?

उत्तर—कुछ भी नहीं। वे अन्धे लोग भेड के तुल्य एक के पीछे दूसरे चलते हैं, कूप खाड़े में गिरते हैं, हट हीं सकते। वैसे ही एक मूर्ख के पीछे दूसरे चलकर मूर्तिपूजा रूप गढ़े में फँस कर दुःख पाते हैं।

प्रश्न—(५) भला यह तो जाने दो परन्तु जगन्नाथ जी में प्रत्यक्ष चमत्कार है। एक कलेवर बदलने के समय चन्दन का लकड़ा समुद्र में से स्वयमेव आता है। चूल्हे पर ऊपर-ऊपर सात हंडे धरने से ऊपर-ऊपर के पहिले-पहिले पकते हैं। और जो कोई वहाँ जगन्नाथ की परसादी न खावे त कुष्ठी हो जाता है और रथ आप से आप चलता, पापी को दर्शन नहीं होता है। इन्द्रदमन के राज्य में देवताओं ने मन्दिर बनाया है। कलेवर बदलने के समय एक राजा, एक पण्डा, क बढई मर जाने आदि चमत्कारों को तुम झूठ न कर सकोगे?

उत्तर—जिसने बारह वर्ष पर्यन्त जगन्नाथ की पूजा की थी वह विरक्त होकर मथुरा में आया था, मुझ से मिला था। मैंने इन बातों का उत्तर पूछा था उसने ये सब बातें झूठ बतलाई। किन्तु विचार से निश्चय यह है [कि] जब कलेवर बदलने का समय आता है तब नौका में चन्दन की लकड़ी ले समुद्र में डालते हैं। वह समुद्र की लहरियों से किनारे लग जाती है। उसको ले सुतार लोग मूर्तियाँ बनाते हैं। जब रसोई बनती है तब कपाट बन्द करके रसोइयों के बिना अन्य किसी को न जाने न देखने देते हैं। भूमि पर चारों ओर छः और बीच में एक चक्राकार चूल्हे बनाते हैं। उन हंडों के नीचे घी, मिट्टी और राख लगा छः चूल्हों पर चावल पका, उनके तले मांज कर, उस बीच के हंडे में उसी समय चावल डाल [उसके ऊपर वे छः हण्डे रख] छः चूल्हों के मुख लोहे के तवों से बंध (= बन्द) कर, दर्शन करने वालों को जो कि धनाढ्य हों, बुला के दिखलाते हैं। ऊपर-ऊपर के हंडों से चावल निकाल, पके हुए चावलों को दिखला, नीचे के कच्चे चावल निकाल दिखा के उनसे कहते हैं कि कुछ हण्डे के लिये रख दो। आँख के अन्धे गाँठ के पूरे रुपये अशर्फी धरते और कोई-कोई मासिक भी बांध देते हैं। शूद्र नीच लोग

मन्दिर में नैवेद्य लाते हैं। जब नैवेद्य हो चुकता है तब वे शूद्र नीच लोग झूठा कर देते हैं। पश्चात् जो कोई रुपया देकर हण्डा लेवे उसके घर पहुंचाते और दीन गृहस्थ और साधु सन्तों को लेके शूद्र और अन्यज पर्यन्त एक पंक्ति में बैठ झूठा एक दूसरे का भोजन करते हैं। जब वह पंक्ति उठती है तब उन्हीं पत्तलों पर दूसरों को बैठाते हैं। महा अनाचार है। और बहुतेरे मनुष्य वहाँ जाकर, उनका झूठा न खाके, अपने हाथ बना खाकर चले आते हैं, कुछ भी कुष्ठादि रोग नहीं होते। और उस जगन्नाथपुरी में भी बहुत से कुष्ठी हैं, नित्यप्रति जूठा खाने से भी रोग नहीं छूटता। और यह जदन्नाथ में वाममाग्रियों ने भैरवीचक्र बनाया है क्योंकि सुभद्रा, श्रीकृष्ण और बलदेव की बहिन लगती है। इसी को दोनों भाइयों के बीच में स्त्री और माता के स्थान बैठाई है। जो जो भैरवीचक्र न होता तो वह बात कभी न होती। और रथ के पहिये के साथ कलां बनायी हैं। जब उनको सूधी घुमाते हैं घूमती हैं, तब रथ चलता है। जब मेले के बीच में पहुँचता है तब उसकी कील को उलटी घुमा देने से रथ खड़ा रह जाता है। पुजारी लोग पुकारते हैं दान देओ, पुण्य करो, जिससे जगन्नाथ प्रसन्न होकर अपना रथ चलावें, पना धर्म रहे। जब तक भेंट आती जाती है तब तक ऐसी ही पुकारते हैं जाते हैं। जब आ चुकती है तब एक ब्रजवासी अच्छे कपड़े दुसाला ओढ़ कर अपने खड़ा रह के हाथ जोड़ स्तुति करता है कि “है जगनाथ स्वामिन् ! आप कृपा करके रथ को चलाइए, हमारा धर्म रखो।” इत्यादि बोल के साष्टाङ्ग दंडवत् प्रणाम कर रथ पर चढ़ता है। उसी समय कील को सूधा घुमा देते हैं और जय-जय शब्द बोल, सहस्रों मनुष्य रस्सी खींचते हैं, रथ चलता है। जब बहुत से लोग दर्शन को जाते हैं तब इतना बड़ा मन्दिर है कि जिसमें दिन में भी अन्धेरा रहता है और दीपक जलाना पड़ता है। उन मूर्तियों के आगे परदे खेंच कर लगाने के पर्दे दोनों ओर रहते हैं। पण्डे पुजारी भीतर खड़े रहते हैं। जब एक ओर वाले ने पर्दे को खींचा, झट मूर्ति आड़ में आ जाती है। तब सब पण्डे पुजारी पुकारते हैं, तुम भेंट धरो, तुम्हारे पाप छूट जायेंगे, तब दर्शन होगा। शीघ्र करो। वे बेचारे भोले मनुष्य धूर्तों के हाथ लूटे जाते हैं और झट पर्दा दूसरा खेंच लेते हैं तभी दर्शन होता है। तब जय शब्द बोल के प्रसन्न होकर धके खाके तिरस्कृत हो चले जाते हैं। इन्द्रदमन वही है कि जिसके कुल में अब तक कलकत्ते में हैं। वह धनाढ्य राजा और देवी का उपासक था। उसने लाखों रुपये लगा कर मन्दिर बनवाया था। इसलिए कि आर्यावर्त देश के भोजन का बखेड़ा इस रीति से छुड़ावें। परन्तु वे मूर्ख कब छोड़ते हैं ? देव मानो तो

उन्हीं कारीगरों को मानो कि जिन शिल्पियों ने मन्दिर बनाया। राजा पण्डा और बड़ई उस समय नहीं मरते परन्तु वे तीनों वहाँ प्रधान रहते हैं, छोटों को दुःख देते होंगे। उन्होंने सम्मति करके उसी समय अर्थात् कलेवर बदलने के समय वे तीनों उपस्थित रहते हैं, मूर्ति का हृदय पोला रखा है। उसमें सोने के सम्पुट में एक सालगराम रखते हैं कि जिसको प्रतिदिन धो के चरणामृत बनाते हैं। उस पर रात्री के शयन आरती में उन लोगों ने विष का तेजाब लपेट दिया होगा। उसको धे के उन्हीं तीनों को पिलाया होगा जिससे वे कभी मर गये होंगे। मरे तो इस प्रकार और भोजनभट्टों ने प्रसिद्ध किया होगा कि जगन्नाथ जी अपने शरीर बदलने के समय तीनों भक्तों को भी साथ ले गये। ऐसी झूठी बातें पराये धन ठगने के लिए बहुत सी हुआ करती है।

प्रश्न—(६) जो रामेश्वर में गंगोत्री के जल चढ़ाने समय लिङ्ग बढ़ जाता है, क्या यह भी बात झूठी है?

उत्तर—झूठी, क्योंकि उस मन्दिर में भी दिन में अन्धेरा रहता है। दीपक रात-दिन जला करते हैं। जब जल की धारा छोड़ते हैं तब उस जल में बिजली के समान दीपक का प्रतिबिम्ब चमकता है, और कुछ भी नहीं। न पाषाण घटे, न बड़े, जितना का उतना रहता है। ऐसी लीला करके बेचारे निर्बुद्धियों को उगते हैं।

प्रश्न—(७) रामेश्वर को रामचन्द्र ने स्थापन किया है। जो मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध होती तो रामचन्द्र मूर्तिस्थापना क्यों करते और वाल्मीकि जी रामायण में क्यों लिखते ?

उत्तर—रामचन्द्र के समय में उस लिङ्ग वा मन्दिर का नाम चिह्न भी न था, किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ रामनामक राजा ने मन्दिर बनवा, लिङ्ग का नाम रामेश्वर घर दिया है। जब रामचन्द्र सीताजी को ले हनुमान आदि के साथ लङ्का से चले आकाश मार्ग में विमान पर बैठ अयोध्या को आते थे तब सीताजी से कहा है कि:—

अत्र पूर्व महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः । सेतुबन्ध इति विख्यातम् ॥

वाल्मीकि रा० लंका कां० [देखिये—युद्धकाण्ड सर्ग १२३ । श्लोक २०, २१] ॥

हे सीते ! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास किया था और परमेश्वर की उपासना ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवों का महादेव परमात्मा हैं उसकी कृपा से हमको सब यहाँ प्राप्त हुई। और देख ! यह

सेतु हमने बांधकर लङ्का में आके, उस रावण को मार, तुझको ले आये। इसके सिवाय वहाँ वाल्मीकि ने अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

प्रश्न—(८) 'रङ्ग है कालियाकन्त को।

जिसने हुक्का पिलाया सन्त को'।

दक्षिण में एक कालियाकन्त की मूर्ति है। वह अब तक हुक्का पिया करती है। जो मूर्तिपूजा झूठी हो तो यह चमत्कार भी झूठा हो जाय।

उत्तर—झूठी-झूठी। यह सब पोपलीला है। क्योंकि वह मूर्ति का मुख पोला होगा। उसका छिद्र पृष्ठ में निकाल के भित्ति के पार दूसरे मकान में नल लगा होगा। जब पुजारी हुक्का भरवा पेंचवां लगा, मुख में नली जमा के, परदे डाल निकल आता होगा तभी पीछे वाला आदमी मुख से खींचता होगा तो इधर हुक्का गड़-गड़ बोलता होगा। दूसरा छिद्र नाक और मुख के साथ लगा होगा। जब पीछे फूकें मार देता होगा तब नाक और मुख के छिद्रों से धुआँ निकलता होगा। उस समय बहुत से मूर्तियों को धनादि पदार्थों से लूट कर धनरहित करते होंगे।

प्रश्न—(९) देखो ! डकोरजी की मूर्ति द्वारिका से भत के साथ चली आई। एक सवा रत्ती सोने में कई मन की मूर्ति तुल गई। क्या यह भी चमत्कार नहीं ? उत्तर— नहीं, वह भक्त मूर्ति को चोर ले आया होगा और सवा रत्ती के बराबर मूर्ति का तुलना किसी भंगड़ आदमी ने गप्प मारा होगा।

प्रश्न—(१०) देखो ! सोमनाथजी पृथ्वी से ऊपर रहता है और बड़ा चमत्कार था, क्या यह भी मिथ्या बात है ?

उत्तर—हाँ मिथ्या है, सुनो ! ऊपर नीचे चुम्बक पाषाण लगा रखे थे। उसके आकर्षण से वह मूर्ति अधर खड़ी थी। जब 'महमुदगजनवी' आकर लड़ा तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मन्दिर तोड़ा गया और पुजारी भक्तों की दुर्दशा हो गई और लाखों फौज दस सहस्र फौज से भाग गई। जो पोप पुजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि "हे महादेव ! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर" और वे अपने चले राजाओं को समझाते थे "कि आप निश्चिन्त रहिये महादेवजी, भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान्, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब काम कर देंगे।" वे बिचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपों के बहकाने से विश्वास में रहे। कितने ही

ज्योतिषी पोपों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का महूत नहीं है एक ने आठवां चन्द्रमा बतलाया। दूसरे ने योगिनी सामने दिखलाई इत्यादि बहकावट में रहे। जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे, कितने ही पोप पुजारी और उनके चले पकड़े गये पुजारियों ने यह भी हाथ जोड़ कहा कि तीन क्रोड़ रुपया ले लो मन्दिर और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कहा कि हम 'बुत्परस्त' नहीं किन्तु 'बुतशिकन्' अर्थात् मूर्तिपूजक नहीं किन्तु मूर्तिभंजक हैं। जा के झट मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की छत टूटी तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्ति गिर पड़ी। जब मूर्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अठारह करोड़ों के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े तब रोने लगे। कहा, कि कोष बतलाओ मान के मारे झट बतला दिया। तब सब कोष लूट मार कर पोप और उनके चेलों को 'गुलाम' बिगारी बना, पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल मूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिये। हाय ! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए ? क्यों परमेश्वर की भक्ति न की ? जो म्लेच्छों के दांत तोड़ डालते और अपना विजय करते। देखो ! जितनी मूर्तियाँ हैं उतनी शूरवीरों की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती ? पूजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की परन्तु मूर्ति एक भी उन [शत्रुओं] के शिर पर उड़ के न लगी। जो किसी एक शूरवीर पुरुष की मूर्ति के सदृश सेवा करते तो वह अपने सेवकों को यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता।

प्रश्न—(११) द्वारिकाजी के रणछोड़जी जिसने 'नर्सीमहिता' के पास हुंडी भेज दी और उसका ऋण चुका दिया इत्यादि बात भी क्या झूठ है ?

उत्तर—किसी साहूकार ने रुपये दे दिये होंगे। किसी ने झूठा नाम उड़ा दिया होगा कि श्रीकृष्ण ने भेजे। जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर मूर्तियां अङ्गरेजों ने उड़ा दी थीं तब मूर्ति कहाँ गई थी ? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े शत्रुओं को मारा परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुरें उड़ा देता और ये भागते फिरते। भला यह तो कहो कि जिसका रक्षक मार खाय उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें ?

प्रश्न—(१२) ज्वालामुखी तो प्रत्यक्ष देवी है सबको खा जाती है। और प्रसाद देवें तो आधा खा जाती और आधा छोड़ देती है मुसलमान बादशाहों ने उस पर जल की नहर छुड़वाई और लोहे के तवे जड़वाये थे तो भी ज्वाला न बुझी और न रुकी। वैसे हिंगलाज भी आधी रात को सवारी कर पहाड़ पर दिखाई देती, पहाड़ को गर्जना कराती

है, चन्द्रकूप बोलता और योनियंत्र से निकलने से पूर्व जन्म नहीं होता, ठूमरा बांधने से पूरा महापुरुष कहलाता। जब तक हिंगलाज न हो आवे तब तक आधा महापुरुष बजता है, इत्यादि सब बातें क्या मानने योग्य नहीं ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि वह ज्वालामुखी पहाड़ से आगी निकलती है। उसमें पुजारी लोगों की विचित्र लीला है। जैसे बघार के घी के चमचे में ज्वाला जाती अलग करने से वा फूक मारने से बुझ जाती और थोड़ा सा घी को खा जाती, शेष छोड़ जाती है, उसी के समान वहाँ भी है। जैसे चुल्हे की ज्वाला में जो डाला जाय सब भस्म हो जाता, जंगल वा घर में लग जाने से सब को खा जाती है, इससे वहाँ क्या विशेष है ? बिना एक मन्दिर, कुण्ड और इधर-उधर नल रचना के हिंगजाल में न कोई सवारी होती और जो कुछ होता है वह सब पोप पूजारियों की लीला से दूसरा कुछ भी नहीं। एक जल र दलदल का कुण्ड बना रखा है, जिसके नीचे बुदबुदे उठते हैं। उसको सफल यात्रा होना मूढ़ मानते हैं। योनि का यन्त्र उन लोगों ने धन हरने के लिए बनाव रखा है और ठुमरे भी उसी प्रकार पोपलीला के हैं। उससे महापुरुष हो तो एक पशु पर ठुमरे का बोझ लाद दें, तो क्या महापुरुष हो जाएगा ? महापुरुष तो बड़े उत्तम धर्मयुक्त पुरुषार्थ से होता है।

प्रश्न—(१३) अमृतसर का तालाब अमृतरूप, एक मुरेठी का फल आधा मीठा और एक भिती नमती और गिरती नहीं, रेवालसर में बेड़े तरते, अमरनाथ में आप से आप लिंग बन जाते, हिमालय से कबूतर के जोड़े आ के सबको दर्शन देकर चले जाते हैं, क्या यह भी मानने योग्य नहीं ?

उत्तर—नहीं, उस तालाब का नाममात्र अमृतसर है। जब कमी जंगख होता तब उसका जल अच्छा होगा। इससे उसका नाम अमृतसर धरा होगा। जो अमृत होता तो पुराणियों के मानने के तुल्य कोई क्यों मरता ? भिती की कुछ बनावट ऐसी होगी जिससे नमती होगी और गिरती न होगी। रीठे कलम के पैवन्दी होंगे अथवा गपोड़ा होगा। रेवालसर में बेड़ा तरने में कुछ कारीगरी होगी। अमरनाथ में बर्फ के पहाड़ बनते हैं तो जल जम के छोटे लिंग का बनना कौन आश्चर्य है ? और कबूतर के जोड़े पालित होंगे, पहाड़ की आड़ में से मनुष्य छोड़ते होंगे, दिखला कर टका हरते होंगे।

प्रश्न—(१४) हरद्वार स्वर्ग का द्वार हर की पैड़ी में स्नान करे तो पाप छूट जाते हैं। और तपोवन में रहने से तपस्वी होता, देवप्रयाग, गंगोत्तरी में गोमुख, उत्तर काशी में

गुप्तकाशी, त्रिगुणी नारायण के दर्शन होते हैं। केदार और बदरीनारायण की पूजा छः महीने तक मनुष्य और छः महीने तक देवता करते हैं महादेव का मुख नेपाल में पशुपति, चूतड़ केदार और तुङ्गनाथ में जानु और पग अमरनाथ में। इनके दर्शन स्पर्शन स्नान करने से मुक्ति हो जाती है। वहाँ केदार और बदरी से स्वर्ग जाना चाहै तो जा सकता है, इत्यादि बातें कैसी है ?

उत्तर—हरद्वार उत्तर पहाड़ों में जाने का एक मार्ग का आरम्भ है। हर की पैड़ी एक स्नान के लिये कुण्ड की सीढ़ियों को बनाया है। सच पूछो तो 'हाड़पैड़ी' है क्योंकि देशदेशान्तर के मृतकों के हाड़ उसने पड़ा करते हैं। पाप कभी नहीं छूट सकता, बिना भोगे अथवा नहीं कटते। 'तपोवन' जब होगा तब होगा, अब तो 'भिक्षुकवन' है। तपोवन में जाने रहने से तप नहीं होता किन्तु तप तो करने से होता है, क्योंकि वहाँ बहुत से दुकानदार छूठ बोलने वाले भी रहते हैं। 'हिमवतः पर्भवति गंगा' पहाड़ के ऊपर से जल गिरता है। गोमिख का आकार टका लेने वालों ने बनाया होगा और वहीं पहाड़ पोप का स्वर्ग है। वहाँ उत्तरकाशी आदि स्थान ध्यानियों के लिए अच्छा है परन्तु दुकानदारों के लिए वहाँ भी दुकानदारी है। देवप्रयाग पुराण के गपोड़ों की लीला है, अर्थात् अलखनन्दा र गंगा मिली है इसलिए वहाँ देवता वसते हैं, ऐसे गपोड़े न मारे तो वहाँ कौन जाय ? और टका कौन देवे ? गुप्तकाशी तो नहीं है वह तो प्रसिद्ध काशी है। तीन युग की धूनी तो नहीं दीखती परन्तु पोपों की दश बीस पीढ़ी की होगी; जैसी खाखियों की धूनी ओर पासियों की अग्यारी सदैव जलती रहती है। तप्तकुण्ड भी पहाड़ों के भीतर उष्मा गर्मी होती है उसमें तप कर जल आता है। उसके पास दूसरे कुण्ड में ऊपर का जल वा जहाँ गर्मी नहीं वहाँ का आता है, इससे ठण्डा है। केदार का स्थान वह भूमि बहुत अच्छी है। परन्तु वहाँ भी एक जमे हुए पत्थर पर पुजारी वा उनके चेलों ने मन्दिर बना रखा है। वहाँ महन्त पुजारी पंडे आंख के अन्धे गांठ के पूरों से माल लेकर विषयानन्द करते हैं। वैसे ही बदरीनारायण में ठग विद्यावाले बहुत से बैठे हैं। 'रावलजी' वहाँ के मुख्य हैं। एक स्त्री छोड़कर अनेक स्त्री रख बैठे हैं। पशुपति एक मन्दिर और पंचमुखी मूर्ति का नाम घर रखा है। जब कोई पूछे तभी ऐसी लीला बलवती होती है। परन्तु जैसे तीर्थ के लोग धूर्त धनहरे होते हैं वैसे पहाड़ी लोग नहीं होते। वहाँ की भूमि बड़ी रमणीय और पवित्र है।

प्रश्न—(१५) विन्ध्याचल में विन्ध्येश्वरी काली अष्टभुजा प्रत्यक्ष सत्य है। विन्ध्येश्वरी तीन समय में तीन रूप बदलती है और उसके बाड़े में मक्खी एक भी नहीं होती। प्रयाग तीर्थराज वहाँ शिर मुण्डाये सिद्धि, गंगा यमुना के संगम में स्नान करने से इच्छासिद्धि होती है। वैसे ही अयोध्या कई बार उड़ कर सब बस्ती सहित स्वर्ग में चली गई। मथुरा सब तीर्थों से अधिक; वन्दावन लीलास्थान और गोवर्द्धन व्रजयात्रा बड़े भाग्य से होती है। सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र में लाखों मनुष्यों का मेला होता है, क्या ये सब बातें मिथ्या हैं ?

उत्तर—प्रत्यक्ष तो आंखों से तीनों मूर्तियां दीखती हैं कि पाषाण की मूर्तियाँ हैं। और तीन काल में तीन प्रकार के रूप होने का कारण पुजारी लोगों के वस्त्र आदि आभूषण पहिराने की चतुराई है और मक्खियाँ सहस्रों लाखों होती हैं; मैं अपनी आंखों से देखा है। प्रयाग में कोई नापित श्लोक बनानेहारा अथवा पोपजी को कुछ धन दे के मुण्डन कराने का माहात्म्य बनाया वा बनवाया होगा। प्रयाग में स्नान करके स्वर्ग को जाता तो लौटकर घर में आता कोई भी नहीं दीखता, किन्तु घर को सब आते हुए दीखते हैं। अथवा जो कोई वहाँ डुब मरता और उसका जीव भी आकाश में वायु के साथ घूम कर जन्म लेता होगा। तीर्थराज भी नाम टका लेने वालों ने धरा है। जड़ में राजा प्रजाभाव कभी नहीं हो सकता। यह बड़ी असम्भव बात है कि अयोध्या नगरी बस्ती, कुत्ते, गधे, भंगी, चमार, जाजरू सहित तीन बार स्वर्ग में गये।

प्रश्न—(१६) हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है, परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम, कृष्णादि अवतार लिये। इससे उसकी मूर्ति बनती है, क्या यह भी बात झूठी है ?

उत्तर—हाँ-हाँ झूठी क्योंकि 'अज एकपात्' [ऋ० ७। ३५। १३] 'अकायम्' [यजु० ४०। ८] इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म मरण और शरीरधारणरहित वेदों में कहा है तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक, अनन्त और सुख, दुःख, दृश्यादि गुणरहित है वह एक छोटे से वीर्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है ? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय हो। और जो अचल, अदृश्य, जिसके विना एक परमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतार कहना जानो बन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र का दर्शन करने को बात कहना है

प्रश्न—(१७) जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है। पुनः चाहें किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं ? देखो:—

न काष्ठे विद्यते देवो न पापाणे न मृण्मये ।

भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥ [चा० नो० द० ८।११] । परमेश्वर देव न काष्ठ, न पापाण, न मृत्तिका से बनाये पदार्थों में है किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है। जहाँ भाव करें वहाँ ही परमेश्वर सिद्ध होता है।

उत्तर—जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी झोंपड़ी का स्वामी मानना, देखो ! यह कितना बड़ा अपमान है ? वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्पपत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते ? चन्दन घिस के क्यों लगाते ? धूप को जला के क्यों देते ? घण्टा, घरियाल, झंज, पखाजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते हो ? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते ? शिर में है, क्यों शिर नमाते ? अन्न, जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते ? जल में स्नान क्यों कराते ? क्यों उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की ? जो व्यापक की करते हो तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो व्याप्य की करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? हम पाषाणादि के पुजारी हैं, ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ?

अब कहिये 'भाव' सच्चा है वा झूठा ? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भाव के अधीन होकर परमेश्वर बढ़ हो जायगा और तुम मृत्तिका में सुवर्ण रजतादि, पाषाण में हीरा पन्ना आदि, समुद्रफेन में मोती, जल में घृत दुग्ध दधि आदि और धूलि में मैदा शक्कर आदि की भावना करके उनको वैसे क्यों नहीं बनाते हो ? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता ? और सुख की भावना सदैव करते हो, बहू क्यों नहीं प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता ? मरने की भावना नहीं करते, क्यों मर जाते हो ? इसलिए तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसे में वैसी करने का नाम भावना कहते हैं। जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसे को वैसा जानना ज्ञान और

अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिए तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो।

मूर्ति और आवाहन

प्रश्न—अजी ! जब तक वेद मन्त्रों से आवाहन नहीं करते तब तक देवता. नहीं आता और आवाहन करने से झूट आता और विसर्जन करने से चला जाता है।

उत्तर—जो मन्त्र को पढ़ कर आवाहन करने से देवता आ जाता है तो मूर्ति चेतन क्यों नहीं हो जाती ? और विसर्जन करने से चला जाता है तो वह कहाँ से आता और कहाँ से जाता है ? सुनो भाई ! पूर्ण परमात्मा न आता ओर न जाता है। जो तुम मन्त्रबल से परमेश्वर को बुला लेते हो तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुए पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते ? और शत्रु के शरीर में [से] जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते ? सुनो भाई ! भोले भाले लोगो ! ये पोपजी तुम को ठग कर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदों में पापाणादि मूर्तिपूजा और परमेश्वर के आवाहन विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है।

प्रश्न:—प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

आत्मेहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥

[देखिए—प्रतिष्ठामयूख ग्रन्थ और तन्त्र ग्रन्थ] ॥

इत्यादि वेदमन्त्र हैं, क्यों कहते हो नहीं है ?

उत्तर—ये सब कपोलकल्पित याममागियों की वेदविरुद्ध तन्त्रग्रन्थों की पोपरचित पंक्तियाँ हैं वेदवचन नहीं हैं।

प्रश्न—तो क्या तन्त्र मठा है ?

उत्तर—हाँ, सर्वथा झूठा है। जैसे आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि पाषाणादि मूर्तिविषयक एक मंत्र भी नहीं, वैसे ही "स्नानादि" इत्यादि वचन भी नहीं, अर्थात् इतना भी नहीं है कि "पापाणादि मूर्तिरचयिता मन्दिरेषु संस्थाध्य गन्धादिभिरन्वयेत्" अर्थात् पापाण की मूर्ति बना, मन्दिरों में स्थापन कर, चन्दन अक्षतादि से पूजे ऐसा लेशमात्र भी नहीं।

मूर्तिपूजा के प्रचलन का प्रारम्भ

यह स्पष्ट है कि मूर्तिपूजा विधान वेदों में एवं वेदांग और उपांगों में नहीं है, न तो ११ आर्ष उपनिषदों में और न ६ शास्त्रों में। फिर प्रश्न है। कि मूर्तिपूजा भारत में कैसे प्रचलित हुई ?

स्वामी जी उत्तर देते हैं कि जैनियों से। (स्वामी जी की शब्दावली में जैन और बौद्ध प्रधानतः एक ही या एक से ही हैं।) जैनियों ने मूर्तिपूजा अपनी मूर्खता से चलाई। यह मूर्खता क्या थी ? जैन और बौद्ध दोनों नास्तिक थे, ईश्वर ऐसी कोई पूज्य सत्ता स्वीकार नहीं करते थे। जब इन धर्मों के प्रवर्तकों (महावीर जी और महात्मा बुद्ध) ने नश्वर शरीर का त्याग किया, तो लोगों के सामने प्रश्न हुआ कि इन आचार्यों के बाद इन लोगों को धर्म तत्व बनाने वाला और मार्ग प्रदर्शित करने वाला कौन होगा। आस्तिकों को तो ईश्वर का सहारा सदा रहता है, जैन और बौद्ध किसका सहारा लेंगे। इसी प्रसंग में इन दोनों सम्प्रदायों ने महावीर जी आदि पूज्य तीर्थंकरों और महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ बना डालीं। महात्मा बुद्ध के देहांशों पर बड़े-बड़े (स्वामीजी ने पाषाणादि मूर्तिपूजकों, और जनता अन्धविश्वास फैलाने वालों का नाम पोप रख दिया। रोमन कैथलिक लोग रोम के धर्माधिकारियों को पोप या पितातुल्य मानते हैं, किन्तु रोम के पोपों ने स्वर्गादि का प्रलोभन दिखाकर भोली जनता को लूटा। पोप को उनका की भक्त यथेष्ट रूपया भेंट करता तो यह पोप ईशा और मथिरल की मूर्ति के सामने खड़ा होकर इस प्रकार की हुंडी लिख कर देता था, कि ये रूपया हमारे पास जमा है। इस रूपये के मूल्य की वस्तुएँ मरने पर तुम्हें स्वर्ग में मिल जावेंगी।) स्तूप बना डाले। बौद्ध धर्म भारत के बाहर देश देशान्तरों में फैला और सब जगह छोटी और विशाल आकार की मूर्तियाँ और पागोडा बन गए, जो आज भी चीन, जापान, थाइलैंड, श्रीलंका, ब्रह्मादेश आदि में देखे जा सकते हैं। इन्हीं जैनों और बौद्धों की नकल में विष्णु के अवतार की कल्पना भारतीय आर्यों ने भी कर डाली ये भारतीय मतिपूजक व्यक्ति आज हिन्दू नाम से विख्यात हैं।

ईश्वर या परमात्मा के तीन स्वरूपों की कल्पना की गयी—सृष्टि कर्ता ब्रह्मा, सृष्टि पालक विष्णु और सृष्टि संहारक शिव या शंकर। यह कल्पना वैदिक शब्दावली के विरुद्ध है। सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म—अर्थात् सबसे बड़ा होने के कारण परमेश्वर को ब्रह्म या ब्रह्म कहते हैं। विष्णुव्याप्तौ, चर और अचर-रूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है। शं कल्याण करोति स शंकरः, जो कल्याण या सुख का करने हारा है, उस परमेश्वर का वाम शंकर है (सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास)।

भारत में मूर्तिपूजा प्रचलित करने में यूनानियों का भी हाथ था। सिकन्दर के आक्रमण के बाद यूनानी भारतवर्ष में प्रचुर संख्या में आने लगे। ये भारतीयों में घुलमिल गये। भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर इनका शासन भी था। इनकी संस्कृति भारत में आयी। ये मूर्तिकला के विशिष्ट विशारद थे। एथेन्स की मूर्तियाँ अब तक कला की दृष्टि से अद्वितीय मानी जाती हैं—देवी-देवताओं की मूर्तियाँ और भावात्मक मूर्तियाँ। वेद का देवतावाद इन देशों में प्रचलित हुआ, और अपनी विशिष्ट विकृति के साथ यह मूर्तिमान हुआ। फलतः सूर्य की मूर्ति, सम्पन्नता की मूर्ति, विद्या को मूर्ति, स्वास्थ्य, तेज, रोष, क्रोध, ईर्ष्या आदि की मूर्तियाँ यूनानियों ने बनायीं। कला की श्रेष्ठता के मित्त ये बनायी गयीं थीं—बाद को मूर्ख हिन्दुओं ने इनका पूजना भी आरम्भ कर दिया। संस्कृति का अधःपतन होने पर पीपल की पूजा, तुलसी की पूजा, गंगामाता की पूजा, चौरस्तों की पूजा और बाद को समाधियों की पूजा, मुसलमान सन्तों की कबरों की पूजा आरम्भ हुई। आज यह मूर्तिपूजा भारतवासियों का एक महान् कलङ्क है। जब तक मूर्तिपूजा समाप्त नहीं होती, आर्य जाति संगठित नहीं हो सकती—छोटे-छोटे सम्प्रदायों में यह बँटी रहेगी और हिन्दु मन्दिर और मठों में प्रचलित अत्याचार र व्यभिचार बराबर बना रहेंगे।

मूर्तिपूजा के प्रचलन के सम्बन्ध में स्वामी जी का जो दृष्टिकोण है, वह निम्न विवरण से स्पष्ट हो जायगा (एकादश समुल्लास)—

प्रश्न—मूर्तिपूजा कहाँ से चली ? उत्तर—जैनियों से।

प्रश्न—जैनियों ने कहाँ से चलायी ? उत्तर—अपनी मूर्खता से।

प्रश्न—जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देख के अपने जीव का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है।

उत्तर—जीव चेतन और मूर्ति जड़। क्या मूर्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जायगा ? यह मूर्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है, जैनियों ने चलायी है। इसलिये इनका खण्डन १२ वें समुल्लास में करेंगे।

प्रश्न—शाक्त आदि ने मूर्तियों में जैनियों का अनुकरण नहीं किया है, क्योंकि जैनियों को मूर्तियों के सदृश वैष्णवादि की मूर्तियाँ नहीं हैं।

उत्तर—हाँ, यह ठीक है। जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमत में मिल जाते। इसलिए जैनों की मूर्तियों से विरुद्ध बनाई, क्योंकि जैनों से विरोध करना इनका काम

और इससे विरोध करना मुख्य उनका काम था। जैसे जैनों ने मूर्तियाँ नंगी ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं, उनसे विरुद्ध वैष्णवादिने यथेष्ट शृङ्गारित स्त्री के सहित रंग राग भोग विषयासक्ति सहिताकार खड़ी और बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शंख घंटा घरियार आदि बाजे नहीं बजाते ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं। तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपों के चले जैनियों के जाल से बच के इनकी लीला में आ फँसे और बहुत से व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमानी असंभव गाथायुक्त ग्रन्थ बनाये। उनका नाम 'पुराण' रख कर कथा भी सुनाने लगे। और फिर ऐसी-ऐसी विचित्र माया रचने लगे कि पाषाण की मूर्तियाँ बना कर गुप्त कहीं पहाड़ वा जंगलादि में धर आये वा भूमि में गाड़ दीं। पश्चात् अपने चेलों में प्रसिद्ध किया कि मुझको रात्री को स्वप्न में महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मी, नारायण और भैरव, हनुमान आदिने कहा कि हम अमुक-अमूक ठिकाने हैं। हमको वहाँ से ला, मन्दिर में स्थापन कर और तू ही हमारा पुजारी होवे तो हम मनवाञ्छित फल देवें। जब आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे लोगों ने पोपजी का लीला सुनी तब तो सच ही मान ली। और उनसे पूछा कि ऐसी वह मूर्ति कहाँ पर है ? तब तो पोपजी बोले कि अमुक पहाड़ वा जंगल में है, चलो मेरे साथ दिखला दूँ। तब तो वे अन्धे धूर्त के साथ चल के वहाँ पहुँचकर देखा। आश्चर्य होकर उस पोप के पग में गिर कर कहा कि आपको ऊपर इस देवता की बड़ी ही कृपा है। अब आप ले चलिये और हम मन्दिर बनवा देवेंगे। उसमें इस देवता की स्थापना कर आप ही पूजा करना और हम लोग भी इस प्रतापी देवता के दर्शन पर्सन करके मनोवाञ्छित फल पावेंगे। इसी प्रकार जब एक ने लीला रची तब तो उसको देख सब पोप लोगों ने अपनी जीविकार्थ छल कपट से मूर्तियाँ स्थापन कीं।

प्रश्न—परमेश्वर निराकार है, वह ध्यान में नहीं आ सकता इसलिए अवश्य मूर्ति होनी चाहिये। भला जो कुछ भी नहीं करे तो मूर्ति के सन्मुख जा, हाथ जोड़ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं, इसमें क्या हानि है ?

उत्तर—जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है, क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिवी पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियों कि जिन पहाड़

आदि से ये मनुष्यकृत मूर्तियाँ बनती हैं उनको देख कर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता ? जो तुम कहते हो कि मूर्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है। और जब वह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहाँ मुझे कोई नहीं देखता। इसलिए वह अनर्थ करे बिना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्तिपूजा करने से सिद्ध होते हैं। अब देखिये ! जो पाषाणादि मूर्तियों को न मानकर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा सर्ववापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सबके बुरे भले कर्मों का द्रष्टा जान कर एक क्षण मात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जान के, कुकर्म करना तो कहाँ रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूँगा तो इस अन्तर्यामी के न्याय से बिना दण्ड पाये कल्पि न बचूँगा। और नामस्मरणमात्र से कुछ भी नहीं होता। जैसे कि मिशरी-मिशरी कहने से मुँह मीठा और नीम-नीम कहने से कड़वा नीहं होता किन्तु जीभ से चाखने से ही मीठा वा कड़वापन जाना जाता है।

पूना प्रवचन र ईश्वर का स्वरूप

महर्षि दयानन्द ने ४ जुलाई १८७५ ई० को रात को ८ बजे पूना में प्रथम प्रवचन दिया, जिसमें ईश्वर के सम्बन्ध में निम्न उल्लेख है। मूर्ति पूजा संबंधी विचार भी इस उल्लेख में आ गये हैं—

स्वामी जी ने प्रथम यजुर्वेद ४०।८ का निम्न मंत्र पढ़ा, जिसका उल्लेख पीछे भी किया जा चुका है—

स पर्यगाच्छुक्रम कायमत्रण मस्त्राविदं शुद्धमवाप विद्धम्।

कविमनीषी परिभूः स्वयम्भू र्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समास्यः।

इसके बाद निम्न वाक्य श्वेताश्वतर उपनिषद् (६।८) के पढ़े—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

परास्य शक्तिविविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च ॥

इन दोनों की व्याख्या करने के अनन्तर स्वामी जी ने कहा—

मूर्त देवताओं में ये गुण नहीं लगते इसलिए मूर्तिपूजा निषिद्ध है इस पर कोई ऐसी शङ्का करते हैं कि रावणादिकों के सदृश दुष्टों का पराभव करने के लिए और भक्तों की मुक्ति होने के अर्थ [ईश्वर को] अवतार लेना चाहिए; परन्तु ईश्वर सर्व शक्तिमान है; इससे अवतार की आवश्यकता दूर होती है। कारण, इच्छामात्र से वह रावण जैसों का नाश तो कर सकता था। इसी प्रकार भक्तों को उपासना करने के लिए ईश्वर का कुछ आकार होना चाहिए, ऐसा भी बहुत से लोग कहते हैं, किन्तु यह कहना तो वरावर (अर्थात् उचित) नहीं है कारण, शरीर स्थित जो जीव है, वह भी आकाररहित है। ऐसा सब स्वीकार करते हैं। वैसा आकार न होते भी हम परस्पर एक दूसरे को पहचानते हैं, और प्रत्यक्ष कभी न देखते हुए भी केवल गुणानुवादों ही से - सद्भावना और पूज्य बुद्धि [अदृष्ट] मनुष्य के विषय में रखते हैं। उसी प्रकार ईश्वर के सम्बन्ध में नहीं हो सकता, यह कहना बराबर नहीं है। इसके सिवाय मन का आकार नहीं है। मन द्वारा परमेश्वर ग्राह्य है, उसे जड़न्द्रियग्राह्यता लगाना यह अप्रयोजक है।

स्वामी सत्यप्रकाश कहा करते हैं कि हमारे शरीर के अभ्यन्तर में पाँच निराकार सत्ताएँ हैं, जिनमें से चार को तो सब स्वीकार करते हैं, पाँचवीं सत्ता ईश्वर के सम्बन्ध में ही हम आपत्तियाँ उठाया करते हैं। पाँच निराकार सत्ताएँ निम्न हैं—(१) पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ निराकार हैं। इन्हें बिना देखे ही इनका अस्तित्व हम सब स्वीकार करते हैं। (२) पाँचों प्राण (प्राण-अपान-व्याव-समान-उदान) निराकार हैं, पर इनके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। (३) मन स्वतः निराकार है। (४) जीवात्मा निराकार है, और (५) कूटस्थ ईश्वर निराकार है।

मूर्तिपूजा सम्बन्धी प्रसिद्ध शास्त्रार्थ

स्वामी दयानन्द प्रसिद्ध वैयाकरण स्वामी विरजानन्द सरस्वती महाराज के शिष्य थे। उन्होंने दयानन्द को आर्ष और अनाएं ग्रन्थों का भेद बताया। ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त ऋषियों के ग्रन्थ आप माने जाते हैं, और महाभारत के बाद के आचार्यों और विद्वानों के ग्रन्थ अनार्ष हैं। दयानन्द ने देखा कि समस्त आर्ष ग्रन्थ वेद को स्वतः प्रमाण और ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। दयानन्द को यह जानकर अतीव आश्चर्य हुआ कि वैदिक संहिताओं में मूर्तिपूजा का कहीं उल्लेख नहीं है। ऋषि दयानन्द को कुछ ऐसा विश्वास था कि काशी की विद्वान् मण्डली को यह बता दिया जाय कि वेदों में मूर्तिपूजा का

विधान नहीं है, तो ये विद्वान् स्वतः मूर्ति पूजा के विरोधी हो जायेंगे। मूर्तिपूजा पौराणिक जगत् का फैलाया हुआ भारतीय समाज का महाकलङ्क है। इसी विश्वास पर पुण्यश्लोक स्वामी दयानन्द सरस्वती कार्तिक कृष्णा २ वा ३, संवत् १९२६ वि० (२२ या २३ अक्टूबर १८६९ ई०) को काशी नगरी में पधारे। प्रथम तो वह गोसाईं जी के बाग में ठहरे, पर बाद को अमेठी के राजा के आनन्द बाग में जो दुर्गाकुण्ड पर है, चले गए। काशी के पंडितों से उनका जगत् प्रसिद्ध शास्त्रार्थ कार्तिक शुक्ला द्वादशी, १६२६ वि० (तदनुसार १६ नवम्बर १८६९) मंगलवार को हुआ। इस शास्त्रार्थ का विवरण सत्य धर्म विचार या धर्म- विचार नाम से मुंशी हरवंशलाल के काशी स्थित लाइट प्रेस में छपा, (यह विवरण संस्कृत में था)। काशी में वैदिक यन्त्रालय की स्थापना माघ शुक्ला २, सं० १९३६ वि० को लक्ष्मी कुण्ड पर महाराज विजयनगराधिपति के स्थान पर हुई। मुंशी बख्तावर सिंह इसके प्रथम प्रबन्धक थे। आर्य समाज का सर्व-प्रथम मासिक पत्र आर्य-दर्पण था। इसके जनवरी १८८० ई० के अंक में इस शास्त्रार्थ का विवरण हिन्दी और उर्दू में समानान्तर कॉलमों में छपा।

हमारे लिए यह सम्भव नहीं है कि हम शास्त्रार्थ का पूरा विवरण यहाँ दें। समस्त हिन्दू इस बात में एकमत हैं कि वेद स्वतः प्रमाण है, और वेद जैमिनी प्रतिपादित धर्म ही धर्म है। पूर्व मीमांसा के आचार्य जी की उक्ति है—चोदना लक्षणोर्थः धर्मः, जो वेद द्वारा स्वीकृत हो या जिसका वेद में विधान है, वह धर्म है। यदि मूर्तिपूजन धर्म है, तो इसकी पष्टि वेद के किसी न किसी मंत्र से होनी चाहिए। इसलिए स्वामीजी महाराज काशी आये, र वहाँ उन्होंने विद्वानों और पण्डितों को आवाहन करके कहा, कि वह वेद मंत्र बताओ जिसमें मूर्तिपूजन या पार्थिव पूजा का विधान हो। ऋग्, यजुः, साम और अथर्व संहिता ही वेद हैं।

महर्षि दयानन्द का प्रश्न सीधा और स्पष्ट था। ईमानदारी की बात तो यह थी कि समस्त पण्डित वृद्ध कहते कि वेदों में मूर्ति पूजन का कहीं प्रमाण नहीं है, ऐसा स्वीकार करने पर शास्त्रार्थ समाप्त हो जाता, किन्तु पण्डितों ने टालमटोल में प्रकरण विरुद्ध प्रश्न आरम्भ कर दिए। व्यर्थ का वितण्डा हुआ। सामवेद के षडविंश ब्राह्मण के प्रतिमा शब्द पर बात चलने लगी, फिर आग प्रत्येक प्रश्न में एक नया प्रकरण विवाद का उपस्थित होने लगा (इस प्रकार के प्रश्नोत्तर का नाम ही तो वितण्डा है), फिर पुराण शब्द की बारी आयी। सभी जानते हैं कि वैदिक साहित्य में पुराण शब्द का प्रयोग भागवत आदि

पुराणों के लिए कहीं प्रयुक्त नहीं है। विपक्षी दल स्वामी जी के साथ छल करने लगा; जनता पण्डितों के साथ मिली हुई थी, लोगों ने कोलाहल किया। इस हुड़दंग में घोषित कर किया गया कि स्वामी जी हार गए। बात इसकी उलटी थी। संसार के सामने ऋषि पक्ष स्पष्ट हो गया कि वेद में प्रतिमा पूजन का कहीं विधा नहीं है जब वेद में प्रतिमा पूजन है ही नहीं, तो मूर्तिपूजक पण्डितों को यह बात आरम्भ में ही स्वीकार कर लेनी चाहिए थी।

स्वामी जी से पूर्व किसी को यह बात सूझी ही नहीं थी, कि हिन्दूमात्र में प्रचलित पाषाण पूजा वेद विरुद्ध है। काषायवस्त्रधारी भारतीय संन्यासी मूर्ति पूजा के विरुद्ध कहे, यह बात हिन्दु परम्परा के सर्वथा विपरीत थी – लोगों के लिए यह एक आश्चर्य था।

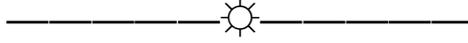
हिन्दू समाज और पाँच महाकलङ्क

महत्मा गांधी अस्पृश्यता या छूतछात को हिन्दू जाति का बड़ा कलङ्क मानते हैं। स्वामी सत्यप्रकाश हिन्दू जाति के पाँच महाकलङ्क अपने प्रवचनों में बहुधा गिनाया करते हैं—

१. मूर्तिपूजा हिन्दूजाति का प्रथम सर्वोपरी कलङ्क है।
२. जन्मना जात-पात की व्यवस्था, र उस पर आश्रित ऊँच-नीच की मान्यता दूसरा बड़ा कलङ्क है।
३. अस्पृश्यता अर्थात् समाज के पर्मुख सेवावर्गीय अंग को अछूत मानना तीसरा महा कलङ्क है।
४. जीवितों की उपेक्षा करके मृतकों का श्राद्ध करना हिन्दू परम्परा का महा कलङ्क है।

५. अप्रगतिशील अन्धविश्वास प्रेरक और जनता को धर्म के या स्वर्ग के नाम पर बहकाने वाले मठाधीशों, गुरुओं, भगवानों, माताओं और भगवानों में आस्था रखना हिन्दू समुदाय का विषम कलङ्क है। स्वामी दयानन्द की उत्कट इच्छा थी कि भारतीय समाज के इन कलङ्कों को मिटा दिया जाय। आर्य समाज इस प्रयास में १०० वर्षों से लगा हुआ है, किन्तु पिछले पचास वर्षों में हिन्दू समाज का इस दिशा में और भी अधिक पतन हो गया है। पहले कभी किसी भी देवी-देवता की मूर्ति व चित्र से कभी मधु नहीं टपका था, किन्तु आधुनिक भगवान् साईं बाबा के चित्र से भस्म का निकलना या मधु का टपकना बताया जाता है। आज इस प्रकार के अन्धविश्वास फिर से पनपने

लगे हैं, और बेचारी मूक जनता को धोखे में डाला जा रहा है। जो समस्त प्रकार के अन्धविश्वासों और छलों में आस्था रखती हो, उसे श्रद्धालु हिन्दू समझा जाता है। स्वामी दयानन्द यदि आज जीवित होते तो उन्हें फिर नये ढंग से सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास को संशोधित और परिवर्धित करना पड़ता। पतनोन्मुख हिन्दुओं का विश्वस्त और आँखों देखा जो विवरण महर्षि ने इस ग्यारहवें समुल्लास में दिया है, वह इतिहास में अपना विशेष मूल्य रखता है।



thearyasamaj.org